ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
*Research Paper* **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed ( Group -I) Journal Volume 10, Iss 04, 2021

# हिन्दी फिल्मों में चित्रित थर्ड गेंडर : एक झरोखा

**डॉ ए के बिन्दु, डॉ के जयलक्ष्मी**

एसोसिएट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, कुसाट

एसोसिएट प्रोफसर, भाषा विभाग, वी आई टी ,वेल्लूर

## सार

थर्ड गेंडर शब्द का उन लोगों के लिए किया जाता है जो सामाजिक लिंग मानदंडों से अलग हैं। यह एक व्यापक शब्द है जिसका इस्तेमाल उन लोगों के लिए किया जाता है जो न तो सीधे तौर पर स्त्री लिंग के अंतर्गत आते हैं और न ही सीधे तौर पर पुल्लिंग के अंतर्गत। इसलिए उनकी दुर्दशा 'सबाल्टर्न' जैसी है। भारतीय सिनेमा में ट्रांसजेंडर पहचान की अपनी धारणाओं, व्याख्याओं और प्रस्तुतियों के मामले में पुराना हो चुका है। ऐसे प्रयास भी हुए हैं, जहाँ ट्रांसजेंडर पहचान को न केवल सहानुभूतिपूर्वक और समझदारी से चित्रित किया गया है, बल्कि व्यक्ति की उस व्यक्ति के रूप में स्वीकार किए जाने की तीव्र इच्छा के साथ भी चित्रित किया गया है। जब तीसरे लिंग की बात आती है, तो बहुत सी भारतीय फिल्मों को उनके जीवन के असंवेदनशील और गलत चित्रण के लिए अतीत की याद दिलाई जाती है। ट्रांसजेंडर समुदाय के लोगों के जीवन के कुछ हिस्सों को दर्शाना आम तौर पर मुश्किल होता है, जिसके परिणामस्वरूप बेबाक रूढ़िवादिता जारी रहती है। इस प्रपत्र में हिन्दी फिल्मों में चित्रित थर्ड गेंडर और उनके तरफ बदलते दृष्टिकोण को कुछ फिल्मों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है |

**बीज शब्द : हिन्दी सिनेमा, थर्ड गेंडर, पहचान निर्माण**

## भूमिका

उत्तर आधुनिक युग से ही लिंग पहचान निरंतर परिवर्तनशील रही है। उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांतकारों, नारीवादियों और उत्तर संरचनावादियों ने लिंग पहचान, व्यक्तिपरकता और इसके प्रतिनिधित्व की कठोरता को विभिन्न कोणों से चुनौती दी है। इस प्रकार, लिंग या सेक्स शब्द एक अंतहीन संघर्ष में रहा है, जिसके परिणामस्वरूप समय-समय पर नई धारणाएँ सामने आई हैं। तीसरे लिंग के लोग हमारे समाज में हाशिए पर पड़े तबके रहे हैं, जिन्हें पहचान से वंचित रखा गया है और मुख्यधारा के परिवेश में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। सिनेमा सामाजिक परिवर्तन को उत्प्रेरित करने का एक सशक्त माध्यम हो सकता है। फिल्मों का समाज के सोचने के तरीके पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। सिनेमा ने निस्संदेह भारत में समलैंगिक आंदोलन में बहुत योगदान दिया है। यौन अल्पसंख्यक में वे सभी लोग शामिल हैं जो समलैंगिक, उभयलिंगी और ट्रांसजेंडर की श्रेणियों में आते हैं। फिल्मों में लिंग रूढ़िवादिता की अधिकता लिंग भूमिकाओं के गलत चित्रण की ओर ले जाती है जो मानव मन में समा जाती है और पीढ़ी दर पीढ़ी एक दृष्टिकोण के रूप में आगे बढ़ती है। भारत में समलैंगिकता को वर्जित माना जाता है। यह समुदाय जो लंबे समय से हाशिए पर है और समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे में अपनी वास्तविक पहचान और प्रतिनिधित्व से वंचित है, इस पर गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय को समाज में स्वीकृति की कमी से लेकर भेदभाव तक कई तरह के संघर्षों का सामना करना पड़ता है। उन्हें कभी भी समाज के स्वीकृत सदस्य के रूप में

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
*Research Paper* **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed ( Group -I) Journal Volume 10, Iss 04, 2021

नहीं दिखाया जाता है। उन्हें मुख्य रूप से विचित्र पात्रों के रूप में चित्रित किया जाता है जो केवल फिल्मों में हास्य के रूप में दिखाई देते हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय सिनेमा में ट्रांसजेंडर समुदाय का प्रतिनिधित्व सवालों के घेरे में रहा है। भारतीय सिनेमा में ट्रांसजेंडर किरदारों का सौम्य प्रदर्शन देखने को मिला है, जिनमें से कुछ हास्य प्रभाव के लिए हैं और कुछ वास्तविकता के प्रति वफादार रहे हैं और इस विषय को बहुत संवेदनशील और यथार्थवादी प्रकाश में पेश करने का प्रयास किया है, लेकिन दुर्भाग्य से ये फिल्में आम मिथकों को चुनौती नहीं दे पाईं और वर्जनाओं को नहीं तोड़ पाईं।

भारत उन देशों में से एक है जो एक वर्ष में सबसे अधिक संख्या में फिल्में बनाता है। मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा भारत में सबसे व्यापक रूप से वितरित सिनेमा है। पहचान निर्माण (identity construction) बॉलीवुड में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है। भारत में फिल्म निर्माता पारंपरिक भारतीय विषयों के प्रचलित ट्रैक से बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन तीसरे लिंग के चित्रण के लिए कोई या बहुत कम छूट नहीं है, एक ऐसा विषय जो अभी भी एक ऐसे देश में वर्जित है जहां सेक्स पर प्रवचन नैतिक प्रतिबंध से बंधा हुआ है। बॉलीवुड में उनका प्रतिनिधित्व और निर्माण लिंग पर प्रचलित विचारधाराओं से मुक्त नहीं है, जहां उन्हें तीसरी श्रेणी के रूप में लिया जाता है। उन्हें भारत में केवल उनके यौन अभिविन्यास (Sexual Orientation) या लिंग अभिविन्यास (Gender orientation) के कारण उत्पीड़ित के रूप में दिखाया जाता है। इस संदर्भ में, यह अध्ययन करना दिलचस्प होगा कि बॉलीवुड तीसरे लिंग को कैसे चित्रित कर रहा है और पिछले दशकों में उनके चरित्र में क्या बदलाव आए हैं। ट्रांसजेंडर पहचान का भारतीय सिनेमाई प्रतिनिधित्व पहले एक कोरस के दौरान किए गए गीत-नृत्य नंबरों में आते थे|

समय बदल रहा है और इसके साथ ही यौन अल्पसंख्यक धीरे-धीरे भारतीय सिनेमा में जगह बना रहे हैं। ट्रांस लोगों के रूप में, उनका जीवन बेहद कठिन है, समाज में उनके बारे में बहुत सारे कलंक हैं। भारत में, तीसरे लिंग के रूप में कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त होने के बावजूद, समुदाय काफी हद तक बहिष्कृत है और अक्सर नफरत और भेदभाव का शिकार होता है। यह देखना दिलचस्प है कि कभी-कभी वर्तमान समुदाय के लिए विरोधाभासी प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं - एक तरफ, उन्हें बहिष्कृत और तिरस्कृत किया जाता है, जबकि दूसरी तरफ, उन्हें आध्यात्मिक/धार्मिक रूप से श्रेष्ठ माना जाता है, जिससे लोगों को लगता है कि समुदाय का आशीर्वाद उनकी मदद करेगा। सिनेमा के संदर्भ में बहुत अधिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है, जो अभी भी बंद कमरे में रहने वाले लोगों के बीच बातचीत के लिए बहुत जरूरी मंच प्रदान कर सकता है।

भारत की कुल जनसंख्या में तीसरे लिंग की महत्वपूर्ण भूमिका है, फिर भी वे अक्सर सामाजिक पहचान और बुनियादी मौलिक अधिकारों से वंचित हैं। प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक या नए मीडिया जैसे विभिन्न मीडिया के माध्यम से उनके प्रतिनिधित्व और चित्रण का प्रक्षेपण भी उनके बारे में प्रमुख प्रवचन की धारणा के कारण रूढ़िबद्ध है। जनसंचार के माध्यम के रूप में फिल्म को एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में माना जाता है जिसमें एक प्रेषित संकेत ऑडियो और विजुअल रिसेप्टर्स द्वारा प्राप्त किया जाता है और दर्शक इस संकेत या संदेश से एक अर्थ निकालते हैं। फिल्में न केवल लोगों का मनोरंजन करती हैं बल्कि दर्शकों की धारणा में शिक्षित और व्यवहारिक परिवर्तन भी लाती हैं। जयकुमार (2006) ने अपनी पुस्तक 'सिनेमा एट द एंड ऑफ द एम्पायर' में लिखा है कि कैसे बॉलीवुड लोगों की धारणा को बदलता है और भारत और विदेशों में अपनी व्यापक पहुंच के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों को उखाड़

*Research Paper* **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** 

फेंकता है।[1] भारतीय सिनेमा जिसे बॉलीवुड (ड्वायर, 2006) के नाम से जाना जाता है, विभिन्न कथानक दृष्टिकोणों के माध्यम से समाज की विशेषताओं, पेचीदगियों, वास्तविकताओं और भ्रमों का अनुकरण और अन्वेषण करता है। इस प्रकार बॉलीवुड समाज के बारे में हमारे दृष्टिकोण और चेतना को आकार देता है | [2] बॉलीवुड में सिनेमाई प्रतिनिधित्व में दर्शकों की धारणा और प्रसारण अधिकारों को ध्यान में रखते हुए 'पटकथा लेखन, स्थान, सेट, छायांकन, अभिनेता और उनकी शैली, संपादन तकनीक' शामिल हैं। यौन अल्पसंख्यक एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे आज भी व्यापक रूप से गलत समझा जाता है और गलत तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। बॉलीवुड में उनके चित्रण पर विभिन्न शोधों ने लगातार तीसरे लिंग के लोगों को काफी हद तक हाशिए पर रखा है और आम जनता में जागरूकता और संवेदनशीलता की कमी पाई है। जिन फिल्मों में तीसरे लिंग के किरदार को दिखाया जाता है, उनमें वह आम दर्शकों को यह दिखाने के लिए आगे आता है कि तीसरे लिंग के लोग कैसे जीते हैं, सोचते हैं, महसूस करते हैं, व्यवहार करते हैं, संवाद करते हैं और जीवन का अनुभव करते हैं। इसलिए यह बहुत ज़रूरी हो जाता है कि बॉलीवुड में तीसरे लिंग के लोगों को ज़िम्मेदारी से दिखाया जाए। सिनेमा समाज का अभिन्न अंग है। यह एक दर्पण की तरह काम करता है जिसमें मनुष्य अपने जीवन का प्रतिबिंब देख सकता है। सिनेमा में किसी भी अन्य कला रूप से अधिक प्रभावित करने की शक्ति है। इसलिए यह समझना बहुत ज़रूरी है कि किसी देश, उसके लोगों और उसकी आकांक्षाओं को देश में बनने वाले सिनेमा में कैसे दर्शाया जाता है।

पहचान निर्माण बॉलीवुड में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है। पहचान निर्माण के बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता। हमारे समाज में बहुत सी विसंगतियाँ हैं और इसलिए यह हमेशा परिवर्तनशील रहता है। किसी की पहचान बनाना और उसे चित्रित करना एक कठिन काम है जब पहचान किसी ऐसे व्यक्ति की हो जो मुख्यधारा के समाज में फ़िट नहीं बैठता। यौन अल्पसंख्यक धीरे-धीरे बॉलीवुड थीम में जगह पा रहे हैं। भारत में फिल्म निर्माता पारंपरिक भारतीय विषयों की लीक से हटकर कुछ करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन तीसरे लिंग के चित्रण के लिए कोई छूट नहीं दी गई है| यह आज भी ऐसा विषय है  जो हमारे देश में वर्जित है। बॉलीवुड में उनके जीवन की कहानियों और मुद्दों का चित्रण व्यंग्य, इनकार, पक्षपात, हास्य, आपराधिक और रूढ़िबद्धता के बीच घूमता रहा है। उन्हें भारत में केवल उनके यौन अभिविन्यास या लिंग अभिविन्यास के कारण उत्पीड़ित दिखाया जाता है। उनका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बहिष्कार उनकी दुर्दशा का मुख्य कारण रहा है।

मुख्यधारा के सिनेमा में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के बारे में लोकप्रिय धारणा को प्रभावित करने की बहुत शक्ति और क्षमता है। हिंदी सिनेमा में, समलैंगिक समुदायों का चित्रण बहुत जटिल है क्योंकि विभिन्न यौन अभिविन्यासों के बीच कोई स्पष्ट सीमांकन नहीं है, उदाहरण के लिए, हिजड़ा शब्द हिजड़ों, इंटरसेक्स और ट्रांसजेंडर लोगों के लिए एक छत्र शब्द है (रेड्डी, 2006)।[3] बॉलीवुड में गाने और नृत्य दृश्यों में उनकी उपस्थिति नवजात शिशुओं और नवविवाहित जोड़ों को आशीर्वाद देने के हिंदू धर्म में उनकी निर्धारित भूमिका के कारण है (कालरा, 2012; बख्शी, 2004)। [4] इशिकावा, टी. (1995) ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड जेंडर ऑफ इंडिया' में लिखा है कि हिजड़े 1970 के दशक से बॉलीवुड में मौजूद हैं। जबकि शुरुआती चित्रणों में हिजड़ों को न्यूनतम भूमिकाओं में दिखाया गया था, बाद में 1990 के दशक में कई फिल्मों में हिजड़ा पात्रों ने विषमलैंगिक लोगों के साथ स्क्रीन साझा की।[5] सक्सेना पी. (2011) ने अपनी पुस्तक 'लाइफ ऑफ ए यूनच' में कहा है कि आमतौर पर किन्नरों को अश्लील भाषा और हाव-

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
*Research Paper* **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed ( Group -I) Journal Volume 10, Iss 04, 2021

भाव का इस्तेमाल करने वाले विरोधी, नायक के सहायक, आमतौर पर कर्कश आवाज में ताली बजाते हुए गाने वाले हास्य पात्र के रूप में चित्रित किया जाता है, जिन्हें उपहास के संकेत के रूप में वस्तु के रूप में देखा जाता है।[6] 50 के दशक के मध्य से लेकर 60 के दशक के मध्य तक, जिसे बॉलीवुड का स्वर्ण युग भी कहा जाता है, हिजड़ों को फिल्मों में महिलाओं के साथी या मुख्य महिला के रूप में दिखाया जाता था, जैसे कि हरम में रानियों को दिखाया जाता था। 1990 के दशक से लेकर अब तक 'हम हैं राही प्यार के' (1993), 'राजा हिंदुस्तानी' (1996) और 'ताल' (1999) जैसी फिल्मों में तीसरे लिंग के सहायक मुख्य हास्य पात्र के रूप में उभरे | 'बॉम्बे बॉयज़' (1998) और 'स्प्लिट वाइड ओपन' (1999) जैसी फिल्मों में कुछ हद तक जटिल समलैंगिक पात्रों के दुर्लभ उदाहरणों से इसकी भरपाई हुई। 'बॉम्बे' (1995), 'तमन्ना' (1997) और 'दरमियान' (1997) जैसी फिल्मों में हिजड़ों को 'संवेदनशील' रूप में दिखाया गया | 'सड़क' (1991), 'तमन्ना और मर्डर 2' में एक खलनायक हिजड़ा की भूमिका निभाई गई। 'शबनम मौसी' (2005) फिल्म में, एक उच्च प्रोफ़ाइल भारतीय हिजड़े की बायोपिक थी, जिसे भारतीय राज्य मध्य प्रदेश में विधान सभा के सदस्य के रूप में चुना गया था। 'ना जाने क्यों' (2010), 'दोस्ताना' (2008), 'फैशन' (2008), 'हनीमून ट्रैवल्स' (2007), 'माई ब्रदर निखिल' (2005), 'गर्लफ्रेंड' (2004), 'कल हो ना हो' (2003), 'मैंगो सॉफले' (2002), 'बॉमगे' (1996), 'द पिंक मिरर' (2003), '68 पेजेस' (2007), 'योर्स इमोशनली' (2006), 'वेलकम टू सज्जनपुर' (2008), 'कपूर एंड संस' (2016), 'अलीगढ़' (2016) जैसी फिल्मों को तीसरे लिंग की फिल्मों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 'दरमियान: इन बिटवीन' भारत में हिजड़ों के जीवन पर एक यथार्थवादी और उत्साहवर्धक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले, हिजड़ों के जीवन के करीब और व्यक्तिगत रूप से दिखाने वाले फिल्म हैं । फिल्म हिजड़ों की कामुकता, शराबखोरी, स्टारडम और अवसाद जैसे मुद्दों से निपटती है, जबकि फिल्म मनोरंजक होने के साथ-साथ दुखद भी है। फिल्म एक ऐसे समाज में हिजड़ों के अस्तित्व को नकारने की खूबसूरती से व्याख्या करती है जो अपने पारिवारिक संबंधों में इतना खोया हुआ है कि तीसरे लिंग को पूरी तरह से नजरअंदाज कर रहा है। हालांकि फिल्म एक दूसरे के समानांतर चलने वाली दो कहानियों का मिश्रण लगती है। फिल्म की कहानी दोनों कहानियों के बीच आगे-पीछे आती है जो कई बार विघटनकारी लगती है। इस फिल्म की निर्देशक के रूप में कल्पना लाजमी ने यौन हाशिये पर पड़े लोगों की दुनिया पर अच्छी तरह से शोध किया है और उसमें गोता लगाया है, जिससे पता चलता है कि उनके पास बोल्ड मुद्दों पर नज़र है।

भारतीय सिनेमा में क्रॉस ड्रेसिंग पुरुष पात्रों को दर्शाने वाले गाने या मज़ेदार दृश्य रखने की एक लंबी परंपरा है जैसे 'रफू चक्कर' में ऋषि कपूर (1975) या 'लावारिस' में हिजड़े के रूप में अमिताभ बच्चन (1981) दर्शाने वाली फ़िल्में हैं । 'अंदाज़' (1949) और 'संगम' (1964) जैसी फ़िल्मों की पटकथा में प्रेम त्रिकोण थे, जहाँ असली कथानक दो मुख्य पुरुष पात्रों के बीच दोस्ती के बारे में था| ऐसी फ़िल्मों में महिला पात्र की मौजूदगी सिर्फ़ समलैंगिकता को कम करने के लिए थी। अस्सी के दशक के अंत में बॉलीवुड ने तीसरे लिंग के लोगों को चित्रित करने वाली फ़िल्मों की शुरुआत की। गोपीनाथ जी. (2008) ने अपने शोध पत्र 'क्वीयरिंग बॉलीवुड' में लिखा है कि 'मस्त कलंदर' (1982) में पिंकू का किरदार हास्य और खलनायक का मिश्रण था। यहाँ तक कि रमेश सिप्पी की 'शोले' (1975) में भी एक महत्वहीन किरदार को जेल के कैदी के रूप में लाया गया जो दूसरे पुरुषों पर खुलेआम डोरे डालता है। हालाँकि यह किरदार प्रमुख नहीं है, लेकिन इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और यह काफ़ी चौकस है।[7] चटर्जी आर. (2013) ने अपनी पत्रिका के लेख 'भारतीय सिनेमा के 100 वर्ष:

समलैंगिक और सेल्युलाइड पर तीसरा लिंग' में लिखा है कि तीसरे लिंग के लोगों के रूढ़िवादी चित्रण को तोड़ने की कोशिश में 'रूल्स-प्यार का सुपरहिट फॉर्मूला' (2003), 'गर्लफ्रेंड' (2004), 'पेज 3' (2005), 'लाइफ इन ए मेट्रो' (2007), जैसी फ़िल्में उन रूढ़ियों को बढ़ावा देने में कामयाब रहीं, जिनसे फ़िल्म निर्माता बचने की कोशिश कर रहे थे। मुख्यधारा के सिनेमा ने तीसरे लिंग के मुद्दे को आम तौर पर निराश किया है। लेकिन साथ ही, ऐसी कई फ़िल्में हैं जो तीसरे लिंग की सांस्कृतिक घटनाओं को गंभीरता से पेश कर रही हैं। इनमें 'टेढ़ी लकीर' (2004), 'तीन दीवारें' (2003), 'स्टैग' (2001), 'हैप्पी हुकर्स' (2006), 'आई कांट थिंक स्ट्रेट' (2007), 'लक बाय चांस' (2009) शामिल हैं।

मुख्यधारा के भारतीय सिनेमा में तीसरे लिंग का चित्रण ज्यादातर हास्य तक ही सीमित रहा है। उनकी वास्तविक जीवन की पीड़ा हमेशा फिल्म की मुख्य पटकथा तक ही सीमित रही है। कशिश जैसे क्वीर फिल्म समारोह, मुंबई अंतरराष्ट्रीय क्वीर फिल्म समारोह, निगाह क्वीर उत्सव, दिल्ली, बैंगलोर क्वीर फिल्म समारो, संवाद: वार्षिक कोलकाता लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल और ट्रांसजेंडर फिल्म और वीडियो फेस्टिवल और पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में लेस्बियन और गे फिल्म फेस्टिवल क्वीर सिनेमा को क्वीर दर्शकों के साथ-साथ मुख्यधारा के दर्शकों तक ले जाने में बहुत निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

इस बीच, बॉलीवुड की कुछ मुख्यधारा की समलैंगिक फिल्में सिर्फ़ मज़ाक बनकर रह गई हैं। 'दोस्ताना' (2008) और 'स्टूडेंट ऑफ़ द ईयर' (2012) जैसी फिल्मों ने समलैंगिकता की अवधारणा को पेश किया, लेकिन इस मुद्दे पर सहानुभूति और गंभीरता लाने में बुरी तरह विफल रहीं। 'नतीजतन अलीगढ़' (2016), 'बुलेट राजा' (2013), 'रज्जो' (2013), 'रक्तधार' (2018) जैसी कुछ फ़िल्में स्टीरियोटाइप को तोड़कर उनमें फिल्मों में एलजीबीटी पात्रों की भूमिकाओं में सुधार करती हैं।

नब्बे के दशक से, बॉलीवुड ने ऐसी फ़िल्में बनाई हैं जो तीसरे लिंग को अपनी पीड़ाएँ कहने की दी है । इन फ़िल्मों के कथानक तीसरे लिंग की माँग को दृढ़ता से दर्शाते हैं कि वह अन्य दो प्रमुख लिंगों की तरह समाज की सांस्कृतिक व्यवस्था में फिट हो। बॉलीवुड में यह बदलाव तीसरे लिंग के साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों की दृढ़ता से भविष्यवाणी करता है। हिंदी फिल्म उद्योग इस बात का एक विशिष्ट उदाहरण है कि कैसे सत्ता का प्रवचन तीसरे लिंग की पहचान और व्यक्तित्व को नष्ट करता है। मुख्यधारा के समाज में तीसरे लिंग का समावेश समाज में सदियों से मौजूद सत्ता के वर्चस्व के लिए एक खतरे के रूप में कार्य करता है। यौन अल्पसंख्यकों को कुचलने के लिए द्विभाजक लिंग की शक्ति की अवधारणा कुछ बॉलीवुड फिल्मों का केंद्रीय विचार रही है।

निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि सिनेमा एक दर्पण की तरह काम करता है जिसमें मनुष्य अपने जीवन का प्रतिबिंब देख सकता है। इसमें किसी भी अन्य हथियार के मुकाबले अधिक प्रभाव डालने की शक्ति है। इसलिए, यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि किसी देश, उसके लोगों और उसकी आकांक्षाओं को उस देश में निर्मित सिनेमा में कैसे दर्शाया जाता है। मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा भारत में सबसे व्यापक रूप से वितरित सिनेमा है। भारत में फिल्म निर्माता पारंपरिक भारतीय विषयों के प्रचलित ट्रैक से बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन ट्रांसजेंडर लोगों के चित्रण के लिए कोई या बहुत कम छूट नहीं दी गई है, एक ऐसा विषय जो अभी भी एक ऐसे देश में वर्जित है, जहाँ सेक्स पर प्रवचन स्वयं नैतिक प्रतिबंध से बंधा हुआ है। बॉलीवुड में उनके जीवन की कहानियों और मुद्दों का चित्रण व्यंग्य, इनकार, पक्षपातपूर्ण, हास्य, आपराधिक और रूढ़िबद्ध के बीच घूमता रहा है।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
*Research Paper* **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed ( Group -I) Journal Volume 10, Iss 04, 2021

यह अध्ययन करना दिलचस्प होगा कि बॉलीवुड ट्रांसजेंडर लोगों को कैसे चित्रित कर रहा है और पिछले दशकों में उनके चरित्र में क्या बदलाव आया है ।

## संदर्भ ग्रंथ

1, Jaikumar P (2006) Cinema at the end of the Empire, Duke University Press.
2, Dwyer, R (2006), Bollywood's new dream: Indian Cinema has a global future in its sights.
3. Reddy G. (2006) With respect to Sex: Negotiating Hijra identity in South India, The Chiago University Press.
4. Bakshi, S (2004) 'A comparative Analysis of Hijras and Drag queers : The subversive possibilities and Limits of parading effeminacy and negotiating Masculinity, Journal of Homosexuality 46 (3/4) 211-223.
5. Ishikawa T (1995) The Third Gender of India, Seikyusha.
6. Saxena P (2011), Life of a Eunuch, Shanta Publishing House, 131-135.
7. Gopinath, G. (2008). Queering Bollywood. Journal of Homosexuality